पाठ्यक्रम - १

१.अ अष्ट द्रव्य से पूजनीय- हमारे नवदेवता

पूज्य पुरुषों की वंदना - स्तुति हमें पूज्य बनने की प्रेरणा देती है। इतना ही नहीं उनके द्वारा बताये जाने वाले मार्ग पर चलकर हम उन जैसा भी बन सकते हैं। हमारे आराध्य पूज्य नवदेवता हैं-

१. अरिहन्त जी	२. सिद्ध जी	३. आचार्य जी
४. उपाध्याय जी	५. साधु जी	६. जिन धर्म
७. जिन आगम	८. जिन चैत्य	९. जिन चैत्यालय

''व्यस्त रहो तो मन स्वस्थ, आत्मस्थ वरना त्रस्त''

''अच्छी किताब अच्छा मित्र समझो सदा साथ दे''

परमेष्ठी का स्वरूप -

धर्म स्थान में जिनका पद महान होता है, जो गुणों में सर्वश्रेष्ठ होते हैं तथा चक्रवर्ती, राजा, इन्द्र एवं देव आदि भी जिनके चरणों की वन्दना करते हैं उन्हें परमेष्ठी कहते हैं।

जीव जिस पद में स्थित होकर आत्म - साधना करते हुए अन्ततः मोक्ष-सुख को प्राप्त करते हैं उस पद को परम पद अथवा श्रेष्ठ पद कहा जाता है।

परमेष्ठी पाँच होते हैं - अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु परमेष्ठी।

नवदेव स्तवन

जय जय जय अरिहंत देव, जो कर्म घातिया नाश किया।
जय जय जय श्री सिद्ध प्रभु जी, सिद्ध शिला पर वास किया।।
जय जय जय आचार्य हमारे, दीक्षा दे जग तार दिया।
जय जय जय श्री उपाध्याय जी, ज्ञानदीप जो जला दिया।।
जय जय जय श्री साधु सहारे, ज्ञान, ध्यान, तप धार लिया।
जय जय जय जिनधर्म देव जी, सच्चा शिव पथ बता दिया।।
जय जय जय पूजित जिन आगम, मोह महातम भगा दिया।
जय जय जय जिनवर की प्रतिमा, सम्यक् श्रद्धा जगा दिया।।
जय जय जय श्री जिन चैत्यालय, जिनशासन की जो गाथा।
जय जय जय जो निश दिन करता, वंदन शिवसुख वो पाता।।

अरिहन्त परमेष्ठी का स्वरूप -

जिन्होंने चार घातिया कर्मों (ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अंतराय) को नष्ट कर दिया हैं तथा जो अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत वीर्य और अनंत सुख रूप अनंत चतुष्टय से युक्त हैं। समवशरण में विराजमान होकर दिव्यध्वनि के द्वारा सब जीवों को कल्याणकारी उपदेश देते हैं, वे अरिहंत परमेष्ठी कहलाते हैं।

सिद्ध परमेष्ठी का स्वरूप -

जो ज्ञानावरणादि आठ कर्मों से रहित हैं एवं क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक ज्ञान, क्षायिक दर्शन, क्षायिक वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलघुत्व और अव्याबाधत्व इन आठ गुणों से युक्त हैं। शरीर रहित सिद्ध परमेष्ठी कहलाते हैं।

आचार्य परमेष्ठी का स्वरूप -

जो दीक्षा-शिक्षा एवं प्रायश्चित्त आदि देकर भव्य जीवों को मोक्षमार्ग में लगाते हैं, संघ के संग्रह (एकत्रित करना), निग्रह (नियंत्रण करना, कंट्रोल) में कुशल होते हैं आचार्य परमेष्ठी कहलाते हैं।

उपाध्याय परमेष्ठी का स्वरूप -

जो मुनि शिष्यों एवं भव्य जीवों को निरन्तर दया, धर्म का उपदेश देते हैं तथा सिद्धान्त आदि ग्रन्थों का ज्ञान करवाते हैं, उन्हें उपाध्याय परमेष्ठी कहते हैं।

साधु परमेष्ठी का स्वरूप -

जो ज्ञान, ध्यान, तप में लीन रहते हैं, आरंभ परिग्रह से रहित पूर्ण दिगम्बर मुद्राधारी साधु परमेष्ठी कहलाते हैं।

जिन धर्म का स्वरूप-

जो संसार के दुखों से छुड़ाकर उत्तम सुख मोक्ष मे पहुंचा देता है वह जिनेन्द्र देव द्वारा कहा हुआ जिनधर्म है। वह उत्तम क्षमादि रूप, अहिंसादि रूप, वस्तु के स्वभावरूप एवं रत्नत्रय रूप है।

जिनागम का स्वरूप-

जिनेन्द्र प्रभु द्वारा कथित वीतराग वाणी को जिनागम कहते हैं जिनागम वस्तु स्वरूप का पूर्ण ज्ञान प्रतिपादित करता है इसे जिनवाणी, सच्चा शास्त्र, श्रुत देव, जैन सिद्धान्त ग्रन्थ भी कहते हैं।

जिन चैत्य का स्वरूप-

साक्षात् तीर्थंकर, केवली भगवान के अभाव में धातु पाषाण आदि से तद्रूप जो रचना की जाती है उसे चैत्य कहते हैं। जिन चैत्य को जिन बिम्ब अथवा जिन प्रतिमा भी कहते हैं।

जिन चैत्यालय का स्वरूप-

जिन चैत्य जहाँ विराजमान होते हैं उसे चैत्यालय कहते हैं। जिन चैत्यालय को समवशरण, मंदिर, जिनगृह, देवालय इत्यादि अनेक शुभ नामों से जाना जाता है।

जिन चैत्य-चैत्यालय मनुष्य एवं देवों द्वारा निर्मित (कृत्रिम) तथा किसी के द्वारा नहीं बनाये गये (अकृत्रिम) दोनों प्रकार के होते हैं। नन्दीश्वर द्वीप आदि अनेक स्थानों पर अकृत्रिम चैत्य-चैत्यालय हैं।

ओंकार की रचना :-

पाँचो परमेष्ठियों के प्रतीक प्रथम अक्षर जोड़ने से ओम् बनता है।

अरिहंत का = अ
सिद्ध (अशरीरी) का = अ + अ = आ
आचार्य का = आ + आ = आ
उपाध्याय का = आ + उ = ओ
साधु (मुनि) का = ओ + म्
= ओम्
= ॐ

अरिहंत से बड़े सिद्ध परमेष्ठी होते हैं फिर भी अरिहंतो के द्वारा हमें धर्म का उपदेश मिलता है एवं सिद्ध भगवान के स्वरूप का ज्ञान कराने वाले अरिहंत भगवान ही हैं। इसीलिए णमोकार मंत्र में सिद्धों से पहले अरिहंतो को नमस्कार किया गया हैं।

- **सुनना भार बढ़ाने के लिये नहीं हल्के/निर्भार बनने के लिए'। जो सुनते हैं उसे जीवन में घोल दें तो भार नहीं बढ़ेगा और आचरण भी सुस्वादु हो जायेगा। जैसे पानी में शक्कर।**

जिनवाणी स्तुति

मिथ्यातम नासवे को, ज्ञान के प्रकाशवे को।
आपा पर भासवे को, भानु सी बखानी है॥
छहों द्रव्य जानवे को, बन्ध-विधि भानवे को।
स्वपर पिछानवे को, परम प्रमानी है॥
अनुभव बतायवे को, जीव के जतायवे को।
काहू न सतायवे को, भव्य उर आनी है॥
जहाँ-तहाँ तारवे को, पार के उतारवे को।
सुख विस्तारवे को, ऐसी जिनवाणी है॥
हे जिनवाणी भारती, तोहि जपूँ दिन रैन।
जो तेरी शरणा गहै, सो पावे सुख चैन॥
जिनवाणी की यह थुति, अल्पबुद्धि परमान।
'पन्नालाल' विनती करै, दे माता मोहि ज्ञान॥
जा वाणी के ज्ञानतैं, सूझे लोकालोक।
सो वानी मस्तक चढ़ो, सदा देत हों धोक॥

महात्मा गाँधी पर जैनधर्म का प्रभाव

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की लड़ाई में जिन्होंने सत्य और अहिंसा के बल पर भारत को सैकड़ों वर्षों की अंग्रेजो की गुलामी से स्वतंत्र कराया , ऐसे राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी का जीवन जैन संस्कारों से प्रभावित था। जब मोहनदास करमचंद गाँधी ने अपनी माता पुतलीबाई से विदेश जाने की अनुमति माँगी तब उनकी माँ ने अनुमति प्रदान नहीं की, क्योंकि माँ को शंका थी, कि यह विदेश जाकर माँस आदि का भक्षण करने न लग जाये। उस समय एक जैन मुनि बेचरजी स्वामी के समक्ष गाँधी के द्वारा तीन प्रतिज्ञा (माँस, मदिरा व परस्त्री सेवन का त्याग) लेने पर माँ ने विदेश जाने की अनुमति दी। इस तथ्य को गाँधी ने अपनी आत्मकथा सत्य के प्रयोग , पृ. ३२ पर लिखा है।

पाँचों परमेष्ठियों के मूलगुण क्रमशः ४६, ८, ३६, २५, व २८ होते हैं। उनका कुल योग ४६ + ८ + ३६ + २५ + २८ = १४३ होता हैं।

तीर्थंकर केवली और सामान्य केवली में निम्न अंतर पाया जाता है –

तीर्थंकर केवली	**सामान्य केवली**
१. तीर्थंकरों के कल्याणक होते हैं।	१. कल्याणक नहीं होते हैं।
२. केवल ज्ञान होने के पश्चात् नियम से समवशरण की रचना होती है।	२. केवल ज्ञान होने के पश्चात् अनियम (जरूरी नहीं) से गंधकुटी की रचना होती है।
३. तीर्थंकरों के नियम से गणधर होते हैं और दिव्य ध्वनि खिरती है।	३. सामान्य केवलियों की दिव्य ध्वनि एवं गणधरों का नियम नहीं।
४. एक उत्सर्पिणी अथवा अवसर्पिणी काल में चौबीस ही तीर्थंकर होते हैं।	४. संख्या निश्चित नहीं।
५. तीर्थंकरों के चिह्न होते हैं।	५. चिह्न नहीं होते हैं।

जैसा का तैसा,
दर्पण दिखाता है,
सुधारता ना ।

उपदेश का प्रभाव

एक सेठ जी की पुत्री मुनि महाराजजी के दर्शन करने गई मुनि महाराज पाँच पापों पर धर्मोपदेश दे रहे थे, वह पुत्री भी पाँच पापों का वर्णन सुन रही थी, तभी मन पवित्र कर उसने उन पाँचों पापों का त्याग कर दिया और पाँच अणुव्रत लेकर घर गई। घर आकर व्रत लेने की बात अपने पिता जी से कह सुनाई। पिता जी नाराज हो गए और कहा कि मेरी आज्ञा के बिना मेरी पुत्री को व्रत देने वाले मुनि कौन होते हैं ? और अपनी पुत्री से व्रत छोड़ने की बात कही पर वह नहीं मानी तब दोनों मुनि महाराज जी के पास जाते हैं तब देखते हैं कि –

रास्ते में एक व्यक्ति को सूली पर चढ़ाया जा रहा था। पुत्री ने उसे देखकर पिता से पूछा पिता जी इसे सूली पर क्यों चढ़ाया जा रहा है, पिता ने कहा इसने अपने एक साथी की हत्या की है अतः इसे फाँसी दी जा रही है। पुत्री ने कहा जो हिंसा इस लोक में सूली और दुःख देने वाली है और परलोक में नरकगति का कारण है अतः हिंसा नहीं करना चाहिए, पिताजी यह व्रत तो बहुत अच्छा है, मैंने हिंसा पाप छोड़ दिया तो क्या बुरा किया ? पिता ने कहा, अच्छा बेटी यह व्रत रख ले। किन्तु शेष चार को छोड़ दे। कुछ आगे और चले तो देखा कि एक पुरुष की जीभ काटी जा रही थी। बेटी ने पूछा पिताजी इसकी जीभ क्यों काटीं जा रही है ? पिताजी ने कहा बेटी इसने झूठ बोला था उसी कारण उसे सजा दी जा रही है। बेटी ने कहा झूठ बोलने वाले का कोई विश्वास नहीं करता और राजा भी दंड देता है परलोक में भी दुर्गति होती है अतः झूठ बोलने से बचना चाहिए पिताजी यह व्रत लेकर मैंने क्या बुरा किया ? पिता ने कहा अच्छा यह भी रख लो किन्तु शेष तीन छोड़ दे। कुछ और आगे चलकर देखा कि एक पुरुष को पुलिस वाले हाथ में हथकड़ी बांधे ले जा रहे हैं। बेटी ने पिताजी से पूछा–इसने क्या किया है पिता ने कहा इसने चोरी की है यह चोर है इसलिए इसके हाथ काटने को पुलिस इसे ले जा रही हैं। बेटी ने कहा देखों तो चोरी छोड़ना तो मेरा तीसरा व्रत है। पिताजी अच्छा इसे भी रख ले। दो मुनि महाराज जी को वापस कर देना और आगे चलकर देखा तो एक पुरुष के हाथ पैर काठ में फँसाए जा रहे हैं। बेटी ने पूछा इसने क्या किया, पिताजी ने कहा इसने पर स्त्री सेवन किया उसी अपराध में यह सजा दी जा रही है। बेटी ने कहा जिस कुशील पाप से व्यभिचारी का मन सदा भ्रान्त रहता है लोगों को दुर्गति का दंड भोगना पड़ता है वह तो छोड़ना ही चाहिए, पिताजी ने कहा यह व्रत भी रख ले, बाकी अब एक तो वापस कर देना। आगे देखा कि पुलिस वाला एक पुरुष को पकड़े लिए जा रहा है बेटी ने पूछा इसे क्यों पकड़े हुए हैं पिता ने कहा इसने अत्यधिक धन एकत्रित किया है। बेटी ने कहा धन कमाने जोड़ने रखवाली करने में कष्ट है तृष्णा बढ़ती है, लोभी कहलाता है अतः दुःख उठाता रहता है और अधिक परिग्रह नरक आयु के बंध का कारण है अतः ऐसे परिग्रह पाप को मैंने त्याग दिया तो क्या बुरा किया ? पिता ने कहा ठीक है यह व्रत भी रख लो। इस तरह हिंसादि पापों की बुराई का विचार करते रहना चाहिए। उसके पिता ने भी मुनिराज के समक्ष पापों को बुरा जानकर मुनिव्रत धारण कर आत्मकल्याण किया इसी तरह हम सभी को आत्म कल्याण के मार्ग पर बढ़ना चाहिए।

शिक्षा– नियम की नियम से परीक्षा होती है, अतः लिए हुए नियमों का दृढ़ता से पालन करना चाहिए।

१.ब जैन श्रावक का प्रथम कर्त्तव्य - देवदर्शन

देव - दर्शन का स्वरूप -

जिनेन्द्र देव का दर्शन श्रावकों का प्रथम एवं प्रमुख कर्त्तव्य कहा गया है। साक्षात् जिनेन्द्र देव का अभाव होने पर उनकी वीतराग प्रतिमा या जिनबिम्ब में उनके गुणों का आरोपण करके श्रद्धा पूर्वक अरिहन्त, सिद्ध या जिनदेव मानकर, निर्मल परिणामों से उनके जैसे गुणों की प्राप्ति की भावना से नमस्कार करना देव-दर्शन कहलाता है।

देव - दर्शन का फल -

देव-दर्शन से पूर्व जन्म में संचित पाप-समूह नष्ट हो जाता हैं, जन्म-जरा-मृत्यु रूपी रोग मिट जाता है एवं स्वर्ग सुख तथा सहज मोक्षसुख की भी उपलब्धि देव-दर्शन से सहज हो जाती है।

देव - प्रतिमा का रूप -

जिनेन्द्र देव की प्रतिमा समचतुरस्र संस्थान वाली खड्गासन अथवा पद्मासन में होती है। प्रतिमा के लटकते हुए दोनों हाथ अथवा हाथ पर हाथ धरी हुई मुद्रा कृतकृत्यता का प्रतीक है। अर्थात् सभी करने योग्य कार्य वे कर चुके, अब कुछ भी करना शेष नहीं रहा। अर्धोन्मीलित नेत्र अन्तर्दृष्टि का प्रतीक है अर्थात् जिन्होंने पर पदार्थों की ओर से दृष्टि को हटाकर अपने आत्म तत्त्व की ओर कर दी है। उनकी वीतराग मुख मुद्रा समत्व परिणति का प्रतीक है अर्थात् वे कभी प्रसन्न अथवा उदास नहीं होते हैं।

देव प्रतिमा

देव प्रतिमा का प्रभाव -

जिनेन्द्र प्रतिमा जहाँ विराजित होती है, उसे जिनालय, जिनमंदिर अथवा चैत्यालय कहते हैं। जिनेन्द्र प्रतिमा एक आदर्श (दर्पण) के समान है, जिसे देखकर हमें अपने मूल स्वरूप का ज्ञान होता है। जैसे दर्पण में अपना चेहरा (मुख) देखने पर, चेहरे पर लगे दाग-धब्बे हम देख पाते हैं, उसी प्रकार वीतराग भगवान का दर्शन हमें अपने भीतर के राग-द्वेष, विषय-कषाय, अज्ञान रुपी धब्बों के देखने में निमित्त बनता है।

जिस प्रकार किसी पहलवान को देखने से पहलवान बनने के, डॉक्टर को देखने से डॉक्टर बनने के भाव मन में उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार वीतरागता से सहित, सौम्य मुद्राधारी जिनेन्द्र भगवान के बिम्ब के दर्शन से हमारे भाव भी वीतरागी बनने के होते हैं/ होना चाहिए।

जल्दी-जल्दी में,
शब्द-अर्थ में छुपा
आनन्द कहाँ ?

शब्द अर्थ में,
छुपा आनन्द मिले,
धीरे पढ़ो तो ।

देव प्रतिमा की महिमा -

जिनबिम्ब के दर्शन से मनुष्य एवं तिर्यञ्चों को सम्यग्दर्शन तक प्राप्त हो जाता है, पूर्व में बाँधे हुए निधत्ति, निकाचित कर्म भी क्षय को प्राप्त हो जाते हैं।

जिन प्रतिमा मंदिर की आवश्यकता -

अपेक्षा रखो,
उपेक्षा मिले तब,
क्रोध तो आवे ।

कर्त्तव्य करो,
अपेक्षा रहित हो,
क्रोध क्यों आवे ।

जिन्होने घर गृहस्थी सम्बन्धी सभी कार्य, पाँच पाप छोड़ दिये हैं ऐसे साधक तो अपने मन में ही परमात्मा की वंदना, पूजन कर सकते हैं। किन्तु गृहस्थ श्रावक के लिए सर्वत्र राग-द्वेष मय वातावरण ही मिलता है वह पाँच पापों में लिप्त रहता है।

उसके लिए ऐसा कोई स्थान चाहिए जहाँ वह कुछ समय पापों से दूर रहकर परमात्मा का दर्शन, पूजन, ध्यान कर सके, जीवन संसार के सत्य को जान सके, जहाँ का वातावरण राग-द्वेष, विषय कषायों से दूर हो अत: ऐसा स्थान मंदिर ही हो सकता है। इसलिए अकृत्रिम जिनालयों के अनुरूप बड़े - बड़े राजाओं ने, सेठों ने एवं सुधी श्रावकों ने भव्य जिन मंदिरों का निर्माण कराया, उनमें जिनबिम्ब प्रतिष्ठित कराया और आवश्यकतानुसार आज भी कर रहे हैं। अत: गृहस्थ के लिए जिनालय की नितांत आवश्यकता है।

जिन मंदिर/देव दर्शन की विधी -

देव दर्शन हेतु प्रात:काल स्नानादि कार्यों से निवृत्त होकर शुद्ध धुले हुए साफ वस्त्र (धोती दुपट्टा अथवा कुर्ता पायजामा) पहनकर तथा हाथ में धुली हुई स्वच्छ अष्टद्रव्य लेकर मन में प्रभु दर्शन की तीव्र भावना से युक्त, नङ्गे पैर नीचे देखकर जीवों को बचाते हुए घर से निकलकर मंदिर की ओर जाना चाहिए। रास्ते में अन्य किसी कार्य का विकल्प नहीं करना चाहिए। दूर से ही मंदिर जी का शिखर दिखने पर सिर झुकाकर जिन मंदिर को नमस्कार करना चाहिए, फिर मन्दिर के द्वार पर पहुँचकर शुद्ध छने जल से दोनों पैर धोना चाहिए।

अर्घ चढ़ाते समय की भावना -

मंदिर के दरवाजे में प्रवेश करते ही ऊँ जय जय जय, निस्सही निस्सही निस्सही नमोस्तु नमोस्तु नमोस्तु बोलना चाहिए फिर मंदिर जी में लगे घण्टे को बजाना चाहिए।

इसके पश्चात् भगवान के सामने जाते ही हाथ जोड़कर सिर झुकावें, णमोकार मंत्र पढ़कर कोई स्तुति स्तोत्र पाठ पढ़कर ''भगवान की मूर्ति को एक टक होकर देखें भावना करें जैसी आपकी छवि हैं वैसी ही वीतरागता मुझें प्राप्त होवे जैसे आप सिंहासन आदि अष्ट प्रातिहार्यो से निर्लिप्त हैं वैसे ही मैं भी संसार में निर्लिप्त रहूं'' साथ में लाए पुंज बंधी मुट्ठी से अँगूठा भीतर करके अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु ऐसे पाँच पुंज चढ़ावे।

फिर जमीन पर गवासन से बैठकर, जुड़े हुए हाथों को तथा मस्तक को जमीन से लगावें तीन बार धोंक देवे तत्पश्चात् हाथ जोड़कर खड़े हो जावे और मधुर स्वर में स्पष्ट उच्चारण के साथ स्तुति आदि पढ़ते हुए अपनी बाँयी ओर से चलकर वेदी की तीन परिक्रमा करें।

तदनन्तर स्तोत्र पूरा होने पर फिर बैठकर नमस्कार करें।

परिक्रमा देते समय ख्याल रखे कोई धोक दे रहा हो तो उसके आगे से न निकलकर, पीछे की ओर से निकले। दर्शन करने इस तरह खड़े हो तथा पाठ करे जिससे अन्य किसी को बाधा न हो।

गन्धोदक लेने की विधी -

दर्शन कर लेने के बाद अपने दाहिने हाथ की मध्यमा और अनामिका अंगुलियों को गन्धोदक के पास रखे अन्य जल में डुबोकर शुद्ध कर लेने पर अंगुलियों से गन्धोदक लेकर उत्तमांग पर लगायें फिर गंधोदक वाली अंगुलियों को पास में रखे जल में धो लेवें। गन्धोदक लेते समय निम्न पंक्तियाँ बोलें -

निर्मलं निर्मलीकरणं, पवित्रं पाप नाशनम्। जिन गन्धोदकं वंदे, अष्ट कर्म विनाशकम्॥

इसके पश्चात् नौ बार णमोकार मंत्र पढ़ते हुए कायोत्सर्ग करें। फिर जिनवाणी के समक्ष 'प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नम:' ऐसा बोलते हुए क्रम से चार पुंज लाइन से चढ़ावें तथा गुरु के समक्ष 'सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्रेभ्यो नम:' ऐसा बोलकर क्रम से तीन पुंज लाइन से चढ़ावे। कायोत्सर्ग करें, फिर भगवान को पीठ न पड़े ऐसा विनय पूर्वक दरवाजे से बाहर अस्सहि, अस्सहि, अस्सहि बोलते हुए निकलें।

दर्शन करते समय चढ़ाने योग्य सामग्री -

मंदिर जाते समय प्रभु चरणों में चढ़ाने हेतु अपनी सामर्थ्य के अनुसार उत्कृष्ट, जीव जन्तु रहित, स्वच्छ सामग्री ले जाना चाहिए। स्वर्ग के देव दिव्य पुष्प, दिव्य फलादि सामग्री ले जाते हैं। चक्रवर्ती आदि राजा महाराजा हीरे मोती जवाहारात आदि भगवान के चरणों में चढ़ाने के लिए ले जाते हैं। मनोवती कन्या का दृष्टान्त आगम में आता है उसने गज मोती चढ़ाकर ही भगवान के दर्शन करने के पश्चात् ही भोजन करने का नियम लिया था।

सामान्य श्रावक श्रीफल, अक्षत, बादाम आदि फल लेकर भगवान के चरणों में जाता है। अत: भगवान के पास क्या लेकर जाएँ इसका कोई विशेष नियम नहीं है, सामान्य रूप से सभी अखंड चावल लेकर देव दर्शन हेतु जाते हैं पर अपनी सामर्थ्य के अनुसार अन्य बहुमूल्य श्रेष्ठ वस्तु भी चढ़ा सकते हैं। वह सामग्री हमारे राग भाव की कमी, त्याग का प्रतीक है। अनेक क्षेत्रों में जहाँ जैसी सामग्री उपलब्ध हो अखरोट, बादाम, काजू, किसमिस, नारियल आदि भी ले जा सकते हैं।

द्रव्य ले जाने का कारण -

चावल आदि सामग्री ले जाने के कारण हमें रास्ते में ध्यान रहता है कि हम कहाँ जा रहे हैं ? मंदिर जा रहे हैं। बाजार से गुजरते हुए भी मन बाजार में नहीं भटकता। दूसरा कारण जब लौकिक व्यवहार में साधारण से सम्राट आदि से मिलने जाते समय, रिश्तेदारों के यहाँ जाते समय कुछ न कुछ भेंट लेकर अवश्य जाते हैं खाली हाथ नहीं जाते। तब तीन लोक के नाथ अकारण बन्धु जहाँ विराजमान है ऐसे मंदिर में खाली हाथ कैसे जा सकते हैं अत: भगवान के पास नियम से कुछ न कुछ लेकर अवश्य जाना चाहिए।

संस्मरण - भव जल का तीर

जल में जलचर जीवों के अलावा अन्य जीवों का ज्यादा देर तक आवास मौत का कारण बनता है। परन्तु यदि कोई अपने प्रयास से उसमें ठहरता है तो समझिएगा कि वह भव-जल से पार होकर किनारा अवश्य पाने वाला होगा। इस प्रयास में अभ्यास परम अनिवार्य है।

सदलगा में बालक विद्या के घर के पास एक बावड़ी बनी थी। उस बावड़ी में आसपास के बच्चे आदि नहाया करते थे। उसमें विद्या कभी पद्मासन लगाकर, कभी चित्त तैरकर, अपने को स्थिर करके ध्यान लगाया करते थे। आसपास के लोग समझते थे, विद्या पानी मचा देता है इसलिए एक दिन श्रीमति से मुहल्ले वालों ने शिकायत कर दी कि आपका बेटा आज फिर बावड़ी में ऊधम कर रहा है, पानी मचा रहा है। जब विद्या अपने घर वापस आये तो माँ बोली-क्यों रे! तुझे हजारों बार समझाया कि बावड़ी में मत नहाया कर, पर तू मानता क्यों नहीं ? बावड़ी में नहाने से आँखें लाल हो जाती हैं, सर्दी बनी रहती है, बुखार भी आ जाता है और बीमार अलग बना रहता है। क्यों रे! बोल तू कब सुधरेगा ? क्यों करता है हम लोगों को परेशान ? कब आयेगी तुझे अकल ? विद्या शान्त रहे शायद बावड़ी के शान्त जल की तरह। न हिले, न डुले, परन्तु जब माँ ने डाँट रूपी हवा चलायी तो विद्या रूपी जल तरंगित हो उठा. एवं जवाब में बोले-मैं पानी नहीं मचाता हूँ मैं तो ध्यान लगाता हूँ। अब क्या कहती, माँ भी हो गयी शान्त सरोवर के नीर की भाँति। पर वो क्या समझे कि आज बावड़ी में ध्यान लगाने वाला कल को भव-जल में ध्यान लगाकर किनारे जाने वाला है।

वास्तव में आत्मा में ध्यान लगाने वाले परम साधक ही मूल्यवान रत्नों की प्राप्ति के अधिकारी होते हैं। आज जगत् पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज जब चर्या करते हैं तो मूलाचार का पालन एवं ध्यान लगाते तो समयसार की साधना करते हैं। इस विधि से भव जल से पार पाया जा सकता है, यह उपदेशों में बताते हैं।

● विपदा भली, अपने पराये का, बोध कराती । ●

अशरीरी सिद्ध भगवान

अशरीरी सिद्ध भगवान, आदर्श तुम्हीं मेरे।
अविरुद्ध शुद्ध चिद्घन, उत्कर्ष तुम्हीं मेरे।।
सम्यक्त्व सुदर्शन ज्ञान, अगुरुलघु अवगाहन।
सूक्ष्मत्व वीर्य गुणखान, निर्बाधित सुख वेदन।
हे गुण अनन्त के धाम, वन्दन अगणित मेरे।।अशरीरी...।।
रागादि रहित निर्मल, जन्मादि रहित अविकल।
कुल गोत्र रहित निश्कुल, मायादि रहित निश्छल।
रहते निज में निश्चल, निष्कर्म साध्य मेरे ।।अशरीरी...।।
रागादि रहित उपयोग, ज्ञायक प्रतिभासी हो।
स्वाश्रित शाश्वत-सुख भोग, शुद्धात्म विलासी हो।
हे स्वयं सिद्ध भगवान, तुम साध्य बनो मेरे ।।अशरीरी...।।
भविजन तुम सम निज-रूप, ध्याकर तुम सम होते।
चैतन्य पिण्ड शिव-भूप, होकर सब दुख खोते।
चैतन्यराज सुखखान, दुख दूर करो मेरे।।
अशरीरी-सिद्ध भगवान, आदर्श तुम्ही मेरे।
अविरुद्ध शुद्ध चिद्घन, उत्कर्ष तुम्हीं मेरे।।

ज्ञान दान सर्वश्रेष्ठ है

आहार दान :	कुछ घंटे निराकुल करता है
औषधि दान :	कुछ काल के लिए निराकुल करता है
ज्ञान दान :	यह हमेशा के लिए निराकुल बना देता है क्योंकि ज्ञान दान ही केवल ज्ञान का कारण बनता है।
अभय दान :	उस भव के लिए निराकुल करता है।

१.स एक आदर्श बेटी - मैना सुन्दरी एवं राजा श्रीपाल

चम्पापुर के राजा का नाम अरिदमन और रानी का नाम कुन्दप्रभा था। रानी कुन्दप्रभा, कुन्दपुष्प के समान लावण्यमयी, गुण और शील में अद्वितीय थी। रानी कुन्दप्रभा के अत्यन्त धीर-वीर, उदारवेत्ता, दीनवत्सल, धर्मप्रिय पुत्र रत्न हुआ।

उस बालक का नाम श्रीपाल रख दिया। राज्य संचालन में दत्तचित, कामदेव के समान श्रीपाल को एवं अन्य ७०० वीरों को अचानक एक साथ महाभयानक कुष्ठ रोग हो गया, जिससे इन लोगों का शरीर गलने लगा एवं खून बहने लगा।

इन लोगों की दयनीय दशा को देखकर प्रजाजन अत्यन्त क्षुब्ध एवं दु:खी रहते थे। जब रोग की दुर्गन्ध के कारण वातावरण बिगड़ने लगा, तब वीरदमन चाचा जी के कहने पर श्रीपाल ७०० वीरों के साथ नगर से बहुत दूर उद्यान में जाकर निवास करने लगे।

एक उज्जयनी नामक ऐश्वर्यपूर्ण नगरी थी। जिसके राजा का नाम पुहुपाल था। उसकी अनेक रानियाँ थी। उनमें से पद्मरानी के गर्भ से सुरसुन्दरी एवं मैनासुन्दरी नाम की दो पुत्रियाँ उत्पन्न हुई। उनमें से सुरसुन्दरी शैव गुरु से एवं मैनासुन्दरी ने आर्यिका से धार्मिक अध्ययन किया था। पिता के पूछने पर सुरसुन्दरी ने अपनी स्वेच्छानुसार हरिवाहन से विवाह स्वीकार कर लिया,परन्तु मैनासुन्दरी ने कहा है कि पिता जी, कुलीन एवं शीलवती कन्यायें अपने मुख से किसी अभीष्ट वर की याचना कदापि नहीं करती है। मैनासुन्दरी की विद्वत्तापूर्ण वार्ता को सुनकर राजा पुहुपाल तिलमिला गये और उन्होंने क्रोध में आकर कोढ़ी राजा श्रीपाल से विवाह कर दिया।

राजा श्रीपाल के कुष्ठ रोग को दूर करने के लिये मैनासुन्दरी ने गुरु के आशीर्वाद एवं विधि के अनुसार अष्टाह्निका पर्व में सिद्धचक्र महामण्डल विधान का आयोजन किया, जिसके प्रभाव से श्रीपाल के साथ ७०० वीरों का भी कुष्ठरोग ठीक हो गया।

कुछ समय बाद श्री पाल मैनासुन्दरी के साथ चम्पापुरी वापस आ गये। एक दिन श्रीपाल अपने महल के छत पर बैठे हुये थे। आकाश में बिजली चमकी, जिसे देखकर उन्हें वैराग्य हो गया। वे अपने पुत्र धनपाल को राज्य सौंपकर वन की ओर चले गये। उनके साथ ८००० रानियाँ तथा माता कुन्दप्रभा भी वन को प्रस्थान कर गई।

श्रीपाल ने मुनीश्वर के पास जाकर जिनदीक्षा धारण कर ली। उनके साथ ७०० वीरों ने भी दीक्षा ले ली, माता कुन्दप्रभा व अन्य रानियों ने भी आर्यिका के व्रत ग्रहण किये। कठोर तपस्या करते हुए अल्पसमय में ही घातिया कर्मों को नष्टकर केवलज्ञान प्राप्त किया और फिर शेष कर्मों को नष्टकर मोक्षधाम को प्राप्त हुये।

केशरिया - केशरिया , आज हमारो मन केशरिया -२
चतुर्मुखी भगवान केशरिया, वीतराग भगवान केशरिया।
सारा मुनिसंघ है केशरिया, भक्तों के हैं भाव केशरिया।।
अष्ट द्रव्य का थाल केशरिया, तिलक लगाया भाल केशरिया।
जल चंदन अक्षत केशरिया, फूल चरूऔ दीप केशरिया।।
धूप केशरिया फल केशरिया, अर्घ बनाया है केशरिया।
भक्ति के हैं भाव केशरिया, मंदिर का कलशा केशरिया।।
मंदिर का झंडा केशरिया, आज धरा हो गई केशरिया।
केशरिया-२ आज हमारो मन केशरिया।।

सारे जहाँ से न्यारा

सारे जहाँ से न्यारा, विद्या गुरु हमारा।
हम वंदना करेंगे, वो देवता हमारा।।
हैं आँधियाँ और तूफाँ, छाया घना अँधेरा।।
दिखती नहीं है मंजिल, बस तू ही है सहारा।। १।।
सासों में गूँजती है, गुरु वाणी गीत धारा।
जीवन किया हवाले, तू आसरा हमारा ।।सारे।। २।।
नयनों से बह रही है, करुणा दया की धारा।
जो भी शरण में आया, भव का मिला किनारा।। सारे। ३।।

● जब मन को विश्वास होता है कि किसी अवस्था या व्यवस्था में परिवर्तन के लिए कोई गुंजाइश नहीं है तो वह धीरे-धीरे उस अवस्था या व्यवस्था को स्वीकार कर लेता है।

प्रत्येक कार्य समय पर होता है इसलिये उतावली नहीं करना चाहिए
जिस प्रकार वृक्ष में चाहे जितना भी पानी डाला जाए पर वह समय पर ही फल देता है
समय एवं धैर्य हमारी समस्याओं को स्वयमेव सुलझा देते हैं

१.द शान्तिनाथ स्तवन

समग्रतत्त्वदर्पणम् विमुक्तिमार्गघोषकम्।
कषायमोहमोचकं नमामि शान्तिजिनवरम्।।१।।

अर्थ : (**समग्रतत्त्वदर्पणम्**) सम्पूर्ण पदार्थों को प्रकाशित करने में दर्पण के समान (**विमुक्तिमार्गघोषकम्**) मोक्षमार्ग का उद्घोष/उपदेश करने वाले (**कषायमोहमोचकं**) कषाय एवं मोह को छोड़ने वाले (**शान्तिजिनवरम्**) श्री शान्तिनाथ जिनवर को (**नमामि**) मैं नमस्कार करता हूँ।

त्रिलोकवन्द्यभूषणं, भवाब्धिनीरशोषणं।
जितेन्द्रियम् अजं जिनं, नमामि शान्तिजिनवरम्।।२।।

अर्थ : (**त्रिलोकवन्द्यभूषणं**) तीनों लोकों में पूज्य आभूषणरूप (**भवाब्धिनीरशोषणं**) संसाररूपी सागर के जल को सुखाने वाले (**जितेन्द्रियम्**) इन्द्रियविजयी (**अजं**) जन्म से रहित उन (**शान्तिजिनवरम्**) श्री शान्तिनाथ जिनवर को (**नमामि**) मैं नमस्कार करता हूँ।

अखण्डखण्डगुणधरं, प्रचण्डकामखण्डनम्।
सुभव्यपद्मदिनकरं नमामि शान्तिजिनवरम्।।३।।

अर्थ : (**अखण्डखण्डगुणधरं**) प्रमाण की अपेक्षा से अखण्ड/एक और निश्चय-व्यवहाररूप नयों की अपेक्षा से खण्ड/ अनेक गुणों के धारक (**प्रचण्डकाम-खण्डनम्**) भीषण/उग्र काम को नाश करने वाले तथा (**सुभव्यपद्मदिनकरं**) भव्यजीवरूपी कमलों को विकसित करने में सूर्य स्वरूप (**शान्तिजिनवरम्**) श्री शान्तिनाथ जिनवर को (**नमामि**) मैं नमस्कार करता हूँ।

एकान्तवादमतहरं, सुस्याद्वादकौशलं।
मुनीन्द्र-वृन्दसेवितं, नमामि शान्तिजिनवरम्।।४।।

अर्थ : (**एकान्तवादमतहरं**) एकान्तवादरूपी मिथ्यामतों के नाशक (**सुस्याद्वादकौशलं**) स्याद्वाद में कुशलता को धारण करने वाले (**मुनीन्द्र-वृन्दसेवितं**) गणधर मुनियों के समूह से सेवित/पूजित (**शान्तिजिनवरम्**) श्री शान्तिनाथ जिनवर को (**नमामि**) मैं नमस्कार करता हूँ।

नृपेन्द्रचक्रमण्डनं प्रकर्मचक्रचूरणं।
सुधर्मचक्रचालकं, नमामि शान्तिजिनवरम्।।५।।

अर्थ : (**नृपेन्द्रचक्रमण्डनं**) प्रधान राजाओं के समूह में शोभास्वरूप (**प्रकर्म-चक्रचूरणं**) प्रचण्ड कर्मों के समूह को नष्ट करने वाले और (**सुधर्म-चक्रचालकं**) समीचीन धर्मचक्र के संचालक उन (**शान्तिजिनवरम्**) श्री शान्तिनाथ जिनवर को (**नमामि**) मैं नमस्कार करता हूँ।

अग्रन्थनग्नकेवलं, सुमोक्षधामकेतनं।
अनिष्टघनप्रभञ्जनं, नमामि शान्तिजिनवरम्।।६।।

अर्थ : (**अग्रन्थनग्नकेवलं**) परिग्रह से रहित नग्नता मात्र को धारण करने वाले (**सुमोक्षधाम-केतनं**) सुन्दर मोक्षमहल के ध्वजास्वरूप (**अनिष्ट-घनप्रभञ्जनं**) अनिष्ट पापरूपी मेघों के लिए प्रचण्ड पवन समान (**शान्तिजिनवरम्**) श्री शान्तिनाथ जिनवर को (**नमामि**) मैं नमस्कार करता हूँ।

महाश्रमणमकिञ्चनं, अकामकामपदधरं।
सुतीर्थ कर्तृषोडशं, नमामि शान्तिजिनवरम्।।७।।

अर्थ : (**महाश्रमणं**) जो श्रमणों में महान (**अकिञ्चनं**) सम्पूर्ण परिग्रह से रहित (**अकामकामपदधरं**) कामना रहित कामदेव पद के धारण करने वाले (**सुतीर्थकर्तृषोडशं**) रत्नत्रय व आगमरूप सच्चे धर्मतीर्थ को करने वाले सोलहवें तीर्थङ्कर (**शान्तिजिनवरम्**) श्री शान्तिनाथ जिनवर को (**नमामि**) मैं नमस्कार करता हूँ।

महाव्रतन्धरं वरं दयाक्षमागुणाकरं।
सुदृष्टिज्ञानव्रतधरं, नमामि शान्तिजिनवरम्।।८।।

अर्थ : (**वरं**) श्रेष्ठ (**महाव्रतन्धरं**) महाव्रतधारी (**दयाक्षमागुणाकरं**) दया-क्षमा आदि गुणों के भण्डार तथा (**सुदृष्टिज्ञानव्रतधरं**) सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के धारक (**शान्तिजिनवरम्**) भगवान् शान्तिनाथ तीर्थङ्कर को (**नमामि**) मैं नमस्कार करता हूँ।

प्रेम से लोगों को जीतना अधिकार दिखाकर जीतने से कहीं अधिक आसान है।

जैसे स्वप्न में काटे गये सिर का दुःख बिना जागे दूर नहीं होता, उसीप्रकार संसार का दुःख बिना आत्मज्ञान हुए दूर नहीं होता।